मस्जिद की जगह मंदिर की पुर्नस्थापना का तर्क मानने से पहले इन चार बातों को सोच लें

योगेंद्र यादव

बीते लगभग एक माह से मैं अपने पिता के साथ संवाद में हूं- उस पिता के साथ जो अब दुनिया में नहीं हैं। मेरे सामने सवाल है कि अतीत में जो मंदिर ढाह दिये गये उनके पुनरुद्धार की पैरोकारी कर रहे लोगों के सामने किन तर्कों के सहारे अपनी बात रखूं?

स्कूल के दिनों में मैं वाद-विवाद के मुकाबलों में हिस्सा लिया करता था। मेरे पिता हमेशा यही कहते थे कि वाद-विवाद के मुकाबले में पहले तो तुम्हें अपने प्रतिपक्षी की तरफदारी में तर्क पेश करने चाहिए। प्रतिपक्षी के तर्क को झटपट ध्वस्त कर देने या फिर उसका मजाक उड़ाने की जगह वे ऐसे महीन तर्क खोज ही लेते थे जिससे प्रतिपक्षी की बात मजबूत होती हो। मुझे ये बात सुहाती नहीं थी क्योंकि वाद-विवाद के प्रतिपक्षियों के पास वैसे महीन तर्क होते नहीं थे। लेकिन पिता अपनी बात पर डटे रहते और कहते, अगर तुम अपने विपक्षी की बात को पूरी ईमानदारी से पेश नहीं कर सकते और फिर भी विपक्षी की बात का खंडन करते हो तो तुम्हारे इस खंडन को कोई भी गंभीरता से नहीं लेगा। पिता आजीवन प्रतिपक्षी की बात को पूरी ईमानदारी और सहानुभूति से पेश करने की अपनी टेक पर अडिग रहे।

शायद यही वजह रही हो कि दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में मैंने राजनीतिक दर्शन का पाठ्यक्रम लिया जिसे प्रोफेसर राजीव भार्गव पढ़ाते थे। जो कुछ मेरे पिता अपने सहज बोध के आधार पर मुझे सिखाते आये थे उसे एक हुनर के रूप में कैसे साधा जाये, यह हमें प्रोफेसर भार्गव ने सिखाया। प्रोफेसर भार्गव ने सिखाया कि महज ये आधार बनाकर कि आपको किसी तर्क की निष्पत्ति यानी तर्क का निष्कर्ष पसंद नहीं है, आप उस तर्क को खारिज नहीं कर सकते। यह भी बताया कि कई दफे आपकी भेंट ऐसे तर्कों से होगी जो आपको युक्तिसंगत ना जान पड़ेंगे लेकिन ऐसे तर्कों का भी प्रत्युत्तर युक्तिसंगत ढंग से देना होता है, उनपर कायदे से सोच-विचार करना होता है।

बहुत बाद में मैंने जाना कि प्रोफेसर भार्गव ने ये जो बात हमें सिखायी वह तो भारतीय दर्शन-परंपरा की केंद्रीय वस्तु रही है: पहले आप पूरी ईमानदारी से एक पूर्वपक्ष तैयार करते हैं यानी वह तर्क गढ़ते हैं जिसका आपको खंडन करना है और फिर आप उत्तरपक्ष तैयार करते हैं यानी पूर्वपक्ष का खंडन करते हैं।

अभी हाल में जब ज्ञानवापी मस्जिद मामले के तूल पकड़ने के साथ एक बार फिर से विवादित स्थलों की खुदाई का नया दौर शुरु हुआ है तभी से मैं इस नुक्ते पर सोच-विचार में पड़ा हूं। इस पागलपन पर दुख और गुस्से का इजहार करने के लम्हों में मुझे पिता की आवाज सुनायी देती है, मानो पूछ रही हो: क्या तुमने प्रतिपक्षी के सही जान पड़ते तर्कों के सबसे निथरे-सुथरे रूपों पर सोच-विचार किया है?

आईए, यहां पहले मंदिर के पुनरुद्धार के पक्ष में तर्क तैयार कर लें। हम ये तो जानते ही हैं कि हमारे वर्तमान में अतीत जीवित रहता है। तर्क दिया जाता है कि अतीत को भूल जाना अच्छा। लेकिन, यह तर्क ऐतिहासिक स्मृतियों के साथ नाइंसाफी करता है क्योंकि किसी समुदाय का आत्मबोध उसकी ऐतिहासिक स्मृतियों से बनता है। इतिहास में कोई गलती हुई है तो उसे निश्चित ही सुधार लेना चाहिए-यह विचार तो दुनिया भर में स्वीकृत है और मूलवासी लोगों के अधिकार के मामले में लागू किया जाता है। आखिरकार ऐतिहासिक रूप से हुए अन्याय का ही तर्क तो है जिसके आधार पर भारत में जाति-आधारित आरक्षण दिया गया।

तो आखिर हम इस तर्क का इस्तेमाल हिन्दुओं के मामले में हुए ऐतिहासिक अन्याय के मसलों पर क्यों ना करें? हिन्दुओं के साथ गलत बर्ताव हुआ, भारत आने वाले मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के पवित्र-स्थलों का अतिक्रमण किया, अपावन बनाया, विध्वंस किया। लंबे समय तक अपनी शक्ति हीनता के कारण हिन्दू अपने साथ किये गये गलत बरताव को दुरुस्त नहीं कर सके। और, अब जाकर वक्त आया है कि अतीत में अपने साथ हुई ऐतिहासिक नाइंसाफी को दुरुस्त कर लिया जाये. मस्जिदों को बनाने के लिए अगर मंदिर का ध्वंस किया गया तो अब ऐसी जगहों पर मंदिर बनाना आखिर मंदिरों के पुनरुद्धार और सुधार का काम कहा जायेगा।

ऐसा करने से हिन्दुओं का सांस्कृतिक आत्मविश्वास बहाल होगा और भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्र के पुनरुत्थान का रास्ता साफ होगा। उपासना-स्थलों से संबंधित प्लेसेज ऑफ वर्शिप एक्ट 1991 तो दरअसल एक पक्षपाती किस्म का सियासी हस्तक्षेप था जो हिन्दुओं के साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को दुरुस्त करने के काम में आड़े आ रहा है। सो, ऐसे अधिनियम की परवाह नहीं करनी चाहिए बल्कि यों कहें कि उसे समाप्त कर देना चाहिए।

मुझे उम्मीद है, अपने प्रतिपक्षी के तर्कों का यह जो ऊपर मैंने सार-संक्षेप प्रस्तुत किया है वह मेरे पिता को ठीक जान पड़ता। उनके बतायी सीख का अनुपालन करते हुए, मैं यहां ये भी मानता चलूं कि किन बातों में अपने 'योग्य प्रतिवादी'(जैसा कि स्कूली दिनों की वाद-विवाद प्रतियोगिता में हम लोग कहा करते थे) से मैं सहमत हूं। पूर्वपक्ष की ये बात बिल्कुल सही है कि ऐतिहासिक अन्याय को दरकिनार नहीं किया जा सकता, उसका समाधान किया जाना चाहिए। पूर्वपक्ष की ये बात भी सही है कि बीते वक्त में बहुत से मुस्लिम शासकों ने बहुत से मंदिरों का विध्वंस किया। किसी भी समुदाय के उपासना-स्थल का ध्वंस करना गलत है। किसी वंचित समुदाय पर निशाना साधते हुए राजनीतिक ताकत का प्रयोग करके उसके उपासना-स्थल का ध्वंस करना एक तरह से अपमान की इंतहा कहा जाएगा। ऐसा किया जाता है तो जाहिर है, समुदाय के मन पर बड़े गहरे घाव लगेंगे और अन्याय के शिकार समुदाय का मन-मानस बुरी तरह घायल होगा।

क्या इन बातों के आधार पर ये मान लिया जाये कि ध्वंस किये गये मंदिरों का पुनरुद्धार जायज है? बेशक, ऐसा माना जा सकता है बशर्ते चार बातों की गारंटी हो जाये। इस सिलसिले की पहली बात तो ये कि इस बात की गारंटी हो जानी चाहिए कि ऐतिहासिक अन्याय की एकमात्र नजीर वही है जिसे हम अभी के अभी दुरुस्त करना चाहते हैं। दूसरे ये कि बीते जमाने में जिसके साथ अन्याय हुआ था और जिसने अन्याय किया था, उन दोनों ही के सर्व भांति पहचान में आ सकने वाले उत्तराधिकारी हमारी आंखों के आगे मौजूद हैं। तीसरे, कि बीते वक्त में अन्याय का जो बरताव किया गया उसका नुकसान अन्याय की चपेट में आया समुदाय लगातार उठाता आ रहा है और चौथी बात कि अन्याय को दुरुस्त करने की बात कहते हुए जो समाधान सुझाया जा रहा है (यानी मंदिर का पुनर्प्रतिष्ठापन) उससे अतीत में हुए अन्याय का प्रक्षालन हो जायेगा और समाज को वैसी कटु स्मृतियों से उबरने में मदद मिलेगी।

जहां तक मंदिर के पुनर्प्रतिष्ठापन का मसला है-वह ऊपर दर्ज इन चार कसौटियों पर निहायत लचर साबित होता है।

क्यों लचर है मंदिर के पुनरुद्धार का सवाल

पहली बात, भारतीय इतिहास में उपासना-स्थलों के ध्वंस की यही कोई एकलौती नजीर नहीं है कि हमें उससे निपटकर हम अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लें। ऐसे ढेर सारे उदाहरण हैं जब हिन्दू आक्रांताओं ने हिन्दुओं के ही मंदिर ढाहे। खोजेंगे तो ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे जिसमें कोई हिन्दू आक्रांता आपको जैन मंदिर और बौद्ध विहार का ध्वंस करता हुआ नजर आयेगा। इसके अतिरिक्त, याद रखने की एक बात ये भी है कि देश के बंटवारे के वक्त बहुत सी मस्जिदों को मिस्मार किया गया और इसी तरह सीमा पार बहुत से मंदिरों का विध्वंस हुआ।

सो, विवादित मस्जिद को हटाकर उसकी जगह मंदिर के पुनर्प्रतिष्ठापन का अर्थ होगा ऐसी बहुत सी दावेदारियों के लिए राह खोलना जिनमें कहा जाएगा कि अभी जिस जगह फलां धर्म मानने वालों का उपासना-स्थल है वहां कभी अमुक धर्म मानने वालों को उपासना-स्थल हुआ करता था सो अभी के उपासना-स्थल को हटाकर पुरानी स्थिति फिर से बहाल की जाये. ऐसी दावेदारियों की जद में कुछ मशहूर हिन्दू-मंदिर भी आयेंगे।

दूसरी बात, यह मानकर चलना गलत है कि मौजूदा हिन्दू समुदाय ऐतिहासिक अन्याय का शिकार है जबकि उसका समकक्ष मुस्लिम समुदाय ऐतिहासिक अन्याय का कर्ता है। उत्तराधिकार का प्रश्न हमेशा ही बहुत जटिल होता है। अगर ये मानकर चलें कि मुगलकालीन भारत के शासक ऐतिहासिक अन्याय के कर्ता थे तो फिर हम किस तर्क से ये बात कहेंगे कि आज जो हमें मुस्लिम नजर आते हैं वे मुगलकालीन मुस्लिम शासकों के वंशज हैं? आप उन मुसलमानों को किस कोटि में रखेंगे जिन्होंने मुगलों के साथ युद्ध ठाना था(मिसाल के लिए मेवात के मेव मुस्लिम)? उन राजपूतों और अन्य हिन्दू शासकों को किस कोटि में रखेंगे जिन्होंने मुगलों का साथ दिया? उन समुदायों के बारे में क्या कहेंगे जिनके सदस्य आज के भारत में तो मुस्लिम हैं लेकिन जिनके पूर्वज मुगलकालीन भारत में हिन्दू थे ? क्या ऐसे लोगों को सजा देना दोहरा अन्याय करना ना होगा? आखिर ये लोग इतिहास के दोनों ही मुकाम पर वंचना के शिकार नहीं हो रहे?

तीसरी बात, यह दावा अतिशयोक्ति ही कहा जायेगा कि मंदिरों के ध्वंस की घटना ने हिन्दू समुदाय को मुस्लिम समुदाय के बरक्स निरंतर जारी नुकसान के एक रिश्ते में बांध दिया और यह नुकसान घटना के 500 साल बाद भी कायम है। सबूत तो ये बताते हैं कि मुसलमान अभिजन का कोई हिस्सा अगर किसी वक्त बरतरी की हालत में था तो उसकी यह बरतरी अंग्रेजों के शासन-काल में जाती रही। साल 2006 की सच्चर समिति रिपोर्ट के तथ्यों से इस बात में कोई शक नहीं रह जाता कि मौजूदा वक्त में मुसलमान शिक्षा, नौकरी, आय तथा सामाजिक हैसियत के लिहाज से हिन्दुओं की तुलना में नुकसान की हालत में हैं। मसले की जाति-आधारित आरक्षण से तुलना करना इसी कारण ठीक नहीं है। आरक्षण अतीत में हुए अन्याय का प्रतिशोध नहीं है। आज भारत में विभिन्न समुदायों के बीच सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक मामले में बहुत बड़ा अन्तर नजर आता है जो विभिन्न समुदायों के साथ अतीत में हुए अन्याय की प्रत्यक्ष देन कहा जा सकता है।

मन से मन का मेल जरूरी

यह बात तो प्रकट ही है कि एक किस्म के धार्मिक ढांचों को ढाहकर उनकी जगह दूसरे किस्म धार्मिक ढांचे खड़ा करना समस्या का समाधान नहीं है। ऐसा करने से चाहे और कुछ भले होता हो, समस्या का खात्मा नहीं होने वाला। मौजूदा स्थिति में मंदिर की पुनर्प्रतिष्ठापन का सवाल ऐतिहासिक अन्याय के प्रक्षालन का सवाल नहीं बल्कि विजय हासिल करने का सवाल बन गया है और इसी कारण आप इसे प्रतिशोध तो कह सकते हैं लेकिन मन से मन का मेल बैठाने की जुगत नहीं।

आशंका है कि मंदिर के पुनर्प्रतिष्ठापन से मुस्लिम समुदाय के मन में यह भावना और ज्यादा गहरी होगी कि वे नुकसान की दशा में हैं और उनके साथ भेदभाव का बरताव हो रहा है। यह एक और ऐतिहासिक अन्याय की शुरुआत होगी, अलगाव और ज्यादा बढ़ेगा, समाज और देश के लिए ज्यादा बड़ी मुश्किल खड़ी होगी. साथ ही ये भी सोचें कि ताजमहल तथा कुतुबमीनार हमारी राष्ट्रीय विरासत का हिस्सा हैं। अगर ऐसे विश्व-धरोहरों का तालिबानी तर्ज पर विध्वंस होता है तो यह मानवता के प्रति अपराध कहलाएगा।

भारत के सामने आगे का रास्ता बस यही है कि एक लकीर खींच दी जाये और कहा जाये कि सारा कुछ यहीं तक! इसके पार आगे कुछ नहीं ! और वक्त के सफरनामे में खींची जाने वाली वह लकीर संभवतया 15 अगस्त 1947 ही हो सकती है। इस तारीख को जो कोई भी उपासना-स्थल जिस भी रुप में मौजूद था उसमें कोई बदलाव नहीं किया जा सकता। साल 1991 का अधिनियम दरअसल यही बात कहता है। यह अधिनियम हमारा मार्गदर्शक बन सकता है। वजह सिर्फ यही नहीं कि यह हमारे देश में बनाया गया कानून है (क्योंकि कानून है तो उसे किसी रोज खत्म भी किया जा सकता है) बल्कि इसलिए भी कि यह कानून हमें सभ्य होकर जीने-रहने का एक सुचिन्तित रास्ता दिखाता है।

बात के इस बिन्दु पर चले आने पर मेरे पिता शायद टोकते हुए कहते : तुम्हारी बात बेशक दमदार लगती है लेकिन तुम अपने इन तर्कों के सहारे क्या यह जता रहे हो कि उपासना-स्थलों के साथ हुई मनमानी और तबाही के जो लोग शिकार हुए उनकी स्मृतियों से तुम्हें कोई लेना-देना नहीं, क्या तुम यह कह रहे हो कि कटु स्मृतियों को मानस-पटल से धो-पोंछ दो और आगे की राह लो? और, इस सवाल पर आकर मैं ठिठकता हूं, जैसा कि उनके ऐसे तमाम सवालों पर मेरे साथ होता था, भले ही वे सवाल मुझे नापसंद हों। इस सवाल का जवाब तैयार करने का रास्ता इस बात की पहचान करने में है कि बीते जमाने में गलत बरताव हुए हैं और लोग ऐतिहासिक अन्याय के शिकार भी हुए हैं लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि हम यह भी मान लें कि ऐसे ऐतिहासिक अन्यायों का कोई उत्तराधिकारी है जिसका हरचंद हक बनता है कि वह अपने पुरखों के साथ हुए गलत बरताव का बदला ले।

हम एक ऐसी सभ्यता के वारिस हैं जिसमें लोग सह-अस्तित्व की भावना के साथ रहते हैं और इसमें ये भी शामिल है कि कई मामलों में लोगों का एक-दूसरे पर अविश्वास रहा है, कई दफे आपस के संघर्ष भी हुए हैं। सो, इस नाते आपस के मन-मिलाप के रास्ते तलाशने होंगे। हमें यह सच स्वीकारना होगा कि विध्वंस हुआ है, उस विध्वंस ने दर्द दिये हैं लेकिन यह भी मानना चाहिए कि विध्वंस सिर्फ हिन्दुओं के उपासना-स्थलों का नहीं हुआ बल्कि अतीत में कई और समुदायों ने भी अपने उपासना-स्थलों का विध्वंस देखा और झेला है, अपने पूजास्थलों को अपावन किया जाता देखा और सहा है।

तो फिर मन के मेल के लिए क्या तरीका अपनायें, क्या जुगत करें? क्या कोई राष्ट्रीय स्मारक बनायें? क्या सत्य और प्रेमपूर्ण सह-अस्तित्व की जरुरत को रेखांकित करता कोई राष्ट्रीय दिवस नियत करें? इस सवाल का उत्तर मैं अपने पिता से नहीं पूछ सकता. इस सवाल के उत्तर के लिए मुझे ज्ञान के उस सोते की तरफ देखना होगा जिसे ज्ञानवापी कहा जाता है।